

# अंदाज अपना अपना



लेखक – नरेश कुमार बेहेरा

"हज़रत "फ़तिमा" से रिवायत है कि "रसूलल्लाह" फर्माते हैं जो शक्स दिन की मसरुफ़ियत से थक जाता है वो सोते वक्त तैंतिस बार "सुभानल्लाह"; तैंतिस बार "अलहम्दुलिल्लाह"; चौंतिस बार "अल्लाहु अकबर" पढ़ने से दिन भर की थकान मिट जाता है और बहुत आराम से सो सकता है।"

मेरे एक करिब दोस्त से ये मेसेज पढ़ कर बहुत ही अच्छा लगा। क्योंकि पहली बार किसी शख्स ने ऐसे मेसेज भेजे हैं; नहीं तो बस मजाक, चुटकुले, शायरी भेजते रहते हैं। लेकिन इनका एस. एम. एस. पाकर मुझे ऐसा लगा, चलो कोई तो एक बन्दा निकला जो खुदा की कद्र करता हो, अपना धर्म का मान रख रहा हो। नहीं तो आजकल धर्म के नाम पर जो कुछ भी हो रहा है उसे सुनना या देखना अशोभनीय है। करीब एक हफ्ते पहले ही गणेश जी का बिसर्जन हुआ था और फीर रमज़ान का महिना शुरू हो गया। गणेश पुजा के दौरान कि एक बात बताना चाहता हूँ; एक दिन शाम को जब मैं आफिस से लौटा तो देखा की मेरे घर के सामने वाले घर के सामने, यानी की दरवाजे पर बहुत भीड़ लगी थी, कुछ जोर से आवाजें भी आ रही थी। मैं सोचा जाके जरा पुछ लूँ, आखिर क्या माजरा है? फिर सोचा, अरे रहने दो। क्यों कि एक घन्टा रोज बस में सफ़र करके आने के बाद कुछ भी देखने या जानने का मन नहीं करता। बस थोड़ा सा नहा धो लो, और आराम करो।

आखिर थोड़ी ही देर बाद कुछ लोगों को मेरे दरवाजे के पास आने का ऐहसास हुआ; क्योंकि मैं चौथी मंजिल में रहता हूँ और वहाँ कोई आता भी नहीं। तभी किसिने दरवाजा खटखटया और बोला - भाई साब ... ऐक्सक्युज मि सार ! जब मैंने दरवाजा खोला और देखा - अरे ये तो शायद वही लोग हैं जो उनके घर के सामने कुछ अजीब से पेश आ रहे थे। "हाँ, बताइए- क्या बात है?" मैंने पुछा तो एक ने बोला, जो सामने था - "हमारी ग़ली में गणेश जी का पुजा हो रहा है, इसलिए कुछ चन्दा दिजीए।" हाँ, क्यों नहीं, एक मिनट ठहरिए - कहकर मैं अन्दर आया। पर्स में देखा तो - एक बीस का, एक पचास का, और एक सौ का नोट है। सोचा कितना दुँ - देढ सो दुँ या सौ दुँ। इतने बड़े फ्लेट में रहता है और इतनी कंजुसी। थोड़ा हडबडाया सोचने में और सोचा क्यों न उन्हीं से पुछ लूँ? बाहर निकला तो वो लोग बातचीत कर रहे हैं :- वह अपने आप को सोच क्या रही है? शाली, कुकुरमुती... पुलिस-वाली की बीबी है तो चंदा नहीं देगी... बोलती है लाइसेंस खारच कर देगी... जेसे कि वो लाइसेंस का ठेका लेके बेठी है... आने दो उसकी हजबेंड को... हम बात करेंगे... आखिर आठ साल से हम यहाँ पुजा करते हैं, हमारा भी अधिकार है चंदा मांगने का...। इतने में मैंने उनसे पुछा कि - भाईसाब आप चंदा कितना ले रहे हैं?

जीतना आप दे सकते हैं, आप की मर्जी। वैसे तो मिनिमम पचास रु. है - उससे आगे आपकी मर्जी - पांच सौ, हजार, पांच हजार तक भी दे सकते हैं। बट नो चेक, ओन्ली क्यास।

तब मैंने १०१ रु. उनको बढा दिया और रसिद ले लिया। सोचा-मामला कुछ तगडा है, पुलिस-वाले की बीबी के साथ झगडा करके आये हैं... जवान हैं... जोश अधिक है, - ऐसे होता है। लेकिन, सो-दो

सो चंदा देने में भी लोगों की कंजुसी? फिर उनसे बहस! क्या जरूरत है? उसने भी अपनी जवानी दिखा दी होगी - जवानों को। ऐसा ठीक नहीं है; साल में एक बार गणेशजी आते हैं; हर महिना थोड़े ही आते हैं! और उनकी आने की खुशी में थोड़ा नाच-गाना भी हो गया तो क्या हुआ? और मैं तो कहता हूँ, ये होना ही चाहिए। बारह महिनों में तेरह पुजा तो भारत में चली आ रही है; जिसकी वजह से आज हमारी संस्कृति अटल है। हर धर्म, हर मजहब के लोग यहाँ पर मिलजुल कर अपनी-अपनी गाथा सुनाते हैं; हर खुशी-हर गम में भागिदारी होते हैं। यही तो, एक ही देश है, जहाँ अनेकता में एकता का दर्शन होता है। और इसीको बजाय रखना भी हम सभी का कर्तव्य है; न कि इस को मिटाना। भारतीय संबिधान में भी सभी धर्मों को समान अधिकार दिया गया है। यहाँ हर किसी को अपनी-अपनी दिवस मनाने में कोई पावंदी नहीं है। परंतु इसका ग़लत इस्तेमाल करना - अपनी माँ का चीर हरण करना ही जैसा है। ऐसे लोगों को कद्यपि इस मिट्टी में रहने का अधिकार ही नहीं देना चाहिए। जो कि धर्म, पुजा, पाठ आदि के नाम पर अपनी संस्कृति, अपनी सभ्यता का उल्लंघन करते हैं। अपने ही देश की मिट्टी पर दुसरो का नंगा नाच देखते हैं। विदेशी वस्त्रों का इस्तेमाल तो करते हैं; अपनी माँ का साडी चिर के, अपनी छाती और जांघ दिखाने का वस्त्र निर्माण करते हैं। धिख है ऐसे लोगों को, और ऐसी नियत पर।

उसी हफ़्ते, इतबार के दिन निकट स्कूल ग्राउंड में, हमारे गणेश पुजा कमीटि के युवाओं ने रिकार्ड डॉन्स का आयोजन किया था। मैंने अपने नये मित्र सुन्दरजी से पूछा - क्या भाई, पुजा के नाम पर ये रिकार्ड डॉन्स कितना उचित या अनुचित है आप ही बताइये? मैं तो यहाँ नया हूँ, क्या हर साल ये बच्चे ऐसे प्रोग्राम करते हैं?

- पिछले दो साल तो मेलोडी-प्रोग्राम हुआ था। उससे पहले एक बार डॉन्स प्रोग्राम हुआ था। और ये चौथा कार्यक्रम है। सुना है इसबार अच्छे डॉन्सर बाहर से बुलाये गये हैं। ... और टिकट है ५० रु. का।

- पचास रुपया तो बहुत कम है... पर ये कितने दिनों तक चलेगा?

- बस दो ही दिन। दिन में चार शो; और एक शो देढ़ घण्टे का।

- प्रोग्राम के बारे में तो पुरा ज्ञान है आपको! लगता है आप बहुत सौकर रखते हैं इन सब में। तब तो आप जरूर देखने जायेंगे?

- हां क्युं नहीं? हमारे ही बच्चों का शो है। न गये तो बुरा मानेंगे। और मुझे तो पॉस भी दिये हैं; अगर आप चाहें तो आप भी आ सकते हैं, मेरे साथ - बिलकुल मुफ़्त में...

- ठिक है; पर डॉन्स प्रोग्राम तो मैं कभी देखा नहीं हूँ, न ही मुझे दिलचस्प है। मुझे तो गाना सुनना या जो टी.वी पर गाने के प्रोग्राम आते हैं, वही देखना पसंद है।

- फिर भी; अगर शाम को आप फ़्री हैं, तो मुझे एक मिस कॉल दे दिजिए; हम और आप मिलके चले जायेंगे देखने के लिये। देढ़ घण्टे का ही तो शो है, युं ही चला जायेगा... और पैसे थोड़ी लगेंगे?

आखिर उसी दिन शाम हम और सुन्दर निकल पड़े प्रोग्राम देखने। टी.वी. में तो अनेक कार्यक्रम आजकल होते हैं, जिसे देखने के लिये हमारे पास फुर्सत ही क्या, टी.वी. ही नहीं है। और आज लॉईव शो देखने का मौका मिला है। जो कि मेरे जीवन का पहला और आखिरी लॉईव प्रोग्राम रहेगा। मेरा कहने का मतलब ये घटना-लुम्बिनि पॉर्क या गोकुल चॉट जैसा भयानक तो था नहीं। वैसा होता तो और भी अच्छा होता-खुदा के पास होता। ये तो उससे भी कई ज्यादा भयानक निकला। ये ऐसे हुआ - शाम का मौसम थोड़ा भिगा था, बूंद-बूंद बारिस भी होने लगी थी। फिर भी हम दोनों निकले - शो के लिये। ऐन्ट्री पॉस रहने के कारण हमें वी.आई.पी. सम्पर्कित स्थान में बैठने का मौका मिला। शो का प्रारंभ तो बहुत ही अच्छा रहा। होस्ट और होस्ट्रेस बहुत ही रोमांचक बना रहे थे शो-को। एक आईटम - फिर दुसरा आईटम - फिर तीसरा शुरु होने ही वाला था, कि कुछ बच्चे चिल्लाने लगे - ए... बन्द करो ये सब! ये देखने के लिए हम सब यहाँ पर नहीं आये... असली माल दिखाओ...असली... बहुत हो गया... और टाईम वेस्ट मत करो हमारा... बुलाओ अपने मैनेजर को... हम बात करेंगे उससे...।

मैंने सोचा, अरे ये किस माल की बात कर रहे हैं? अभी तक जो हुआ, ठिक ही तो था। फिर ये चिल्ला क्यों रहे हैं? तब मैंने उठकर उन बच्चों से कहा, जो चिल्ला रहे थे- अरे भाई सॉब, आप थोड़ा शांत रहेंगे, कृपया शो देखने दिजिए। उधर से आवाज आई- ऐ मामूँ, चुपचाप बैठ जा... इस उम्र में इतनी आवाज़ ठिक नहीं। असली शो तो अभी शुरु होगा... चुपचाप बैठ। ऐ...शुरु करो रे...।

सुन्दर ने मेरा हाथ खिंच लिया कुछ कहने से पहले ही और बोला - अरे ये बच्चे हैं, उनका कुछ पसंदिया गाना बजाने के लिये कह रहे होंगे।

उसके बाद जो शो चला वही था असली शो - उनके लिए। न की मेरे लिए। स्टेज पर कुछ विदेशी नर्तकियाँ और कुछ भारतीय नर्तकियाँ आने लगे एक के बाद एक और हर गाने में नाचते नाचते अपनी सारी वस्त्र उतार के चले जाते... बिना वस्त्र के अपनी अपनी अंगों को हिलाते समय युवाओं की खुशी की सीमा न रहती, उनकी सीटी की आवाज से तो मेरा कान के पर्दे हिलने लगे। सुन्दर की तरफ देखा तो - वो एकदम अबाक से मुँह खोले देख रहा था, तब कहने लगा- "अरे ये सब क्या है? मुझसे ये सब देखा नहीं जानता।" तब मैंने कहा- "तो मुँह खोलके क्या देख रहा है? ये पेड के आम नहीं है, अंगूर के रस नहीं है जो तेरे मुँह में आ के गिर जायेंगे। तुमने ही तो मुझे कहा था ना रिकार्ड डॉन्स है... अजी ये नेकेड डॉन्स है; रेकर्ड डॉन्स नहीं। मैं तो चला यहाँ से अब आप भी जल्द आ जाओ। बैठे बैठे कुछ तो रस मिलेगा नहीं... खुद का रस बह जायेगा।"

बस मैं खीसक गया वहाँ से; बाहर आकर एक ठंडी आह ली, बारिश हो रहा था। सोचा दो मिनट प्रतीक्षा किया जाये - शायद सुन्दर भी आ जाये। लेकिन व्यर्थ। टेन्ट के बाहर कोई भी नहीं था। आश्चर्य हुआ इन नंगा नाच का कार्यक्रम देखने के लिए प्रशासन भी कितना आग्रह है। वहाँ, बाहर एस.पि. की गाडी, एम.एल.ए. की और कई बड़े बड़े अधिकारियों की गाडी की लम्बी लाईन लगी

थी। सुरक्षाबल के सभी कर्मचारी भी अंदर घूस गये थे। बाहर एकदम सन्नाटा। जैसे कि सबको साँप सुंघ गया हो। लेकिन ठिक इसका विपरीत माहौल अंदर का था। घर आते आते कुछ क्षण सोचने लगा- अगर मैं ऑल काईदा या किसी आतंकवादी संगठन का आदमी होता तो पहले मैं यहां पर बम फोड़ता, न कि मंदिरों में, मसजिदों में या गीर्जा घरों में। वहां तो कई-कभार एक-दो पापी मीलेंगे। लेकिन ये जगह तो पुरे पापियों का भण्डार है। धर्म के नाम पर, पुजा के नाम पर अपनी संस्कृति और सभ्यता का नामो निशान मिटाने पर जुटे हुए हैं; घृणा है ऐसी पुजा, ऐसी सम्प्रदाय पर और धिख है ऐसे लोगों को।

लोग कहते हैं, कवल धर्म ही जाति की बृद्धि का कारण है। ये तो ठिक है, परंतु यह धर्माकुर जो मानव जाति का निर्माण करता है, इस असभ्य, कमीने और पापमय जीवन की गंदी नाली से कभी नहीं उगता। बुद्ध मंदिरों या गिर्जा घरों की मोमबतियों की रोशनी से जापान या एसियाई देश इतने उच्चस्तर पर नहीं पहुंचे हैं। भारत के कई वर्ष बाद स्वाधिनता पाकर भी जापान भारत से आगे चला गया है। क्युं कि ये उनकी कठोर जीवन और तपस्या बल के कारण ही है न कि ऐसे देहलोलुपियों की वजह से जो धर्म के नामपर लोगों को चुना लगाते हैं, लुटते हैं। मैं तो कहता हूँ, भारत में आज जो कुछ भी है वह अंग्रेजों का झुठा दाना है। नहीं तो अंग्रेजों से पहले यहाँ कई राजा-महाराजाओं का अत्याचार चलता रहा और आज इन महानुभवी मंत्रियों का। और हमारे जैसे कुछ लोगों की वजह से जो चंदा दे-देकर ऐसे पाप-कर्मों को बढ़ावा देते हैं उसी का कारण है- ये देश-भर में बढ़ती जगह जगह पर अन्याय-अत्याचार, आतंकवाद, भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, महंगाई, मिलावट आदि का दर्शन।

भारत में दो-सौ वर्ष की अंग्रेजों का शासन और उससे पहले भी कई राजा महाराजाओं का शोषण से तो भारत एक बिना माँस वाला काया जैसा ही था। और इस कंकाल शरीर को अगर जीवित किये हैं तो वो हैं, इस मिट्टी में जन्म लेने वाले कई धार्मिक महापुरुष। जैसे - संत गौतम बुद्ध, संत महावीर, ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती, संत शेख फ़रिद, संत नामदेव, संत रामानंद, संत कबीर, संत एकनाथ, संत गुरु नानकदेव, संत चैतन्य महाप्रभु, संत तुलसीदास, प्रेम दीवानी मीरा, संत दादू दयाल, संत तुकाराम आदि।

और आधुनिक युग के संत स्वामी दयानन्द सरस्वती, राजा राममोहन राय, संत रामलिंगर (वल्लल्लार), श्री रामकृष्ण परमकृष्ण, संत स्वामी विवेकानन्द, शिर्डी साई बाबा, श्री आरुबिन्दो, डॉ. बाबा साहेब आम्बेडकर, श्री नारायण गुरु, महात्मा गांधी, श्री सत्य साई बाबा, स्वामी शिवानन्द, ठाकुर श्री श्री अनुकूलचन्द्र, भगवान स्वामीनारायण, श्री श्री श्री तिरुचि स्वमिगल, ब्रह्मकुमारी, माता अमृतानन्दमयी (अम्मा), राधास्वामी, सदगुरु श्री श्री रविशंकरजी, संत श्री आशाराम बापु जैसे कई महान आत्माएँ जो कि इस सास्वत और पवित्र भूमि पर जन्म लेकर हम सभी को धर्म का हिस्सा बनाने में कामयाब हुए हैं। और इन्हीं महापुरुषों की वजह से ही आज हमारा देश आगे की ओर चल रहा है। इन सभी का अंदाज या तरीका अलग अलग क्युं न हो जैसे - कोई शिव को, कोई



राम को, कोई अल्लाह को, कोई ईसा मसिह को अपना दिव्य मानकर पुजते हैं; लेकिन सबका मंजिल एक ही है - एक ही खुदा, एक ही ईश्वर। एक परमेश्वर और एक मानवजाती।

मनुष्य का धर्म है - जीयो और जीने दो। जीने के लिए अन्न के सिवाय कुछ और भी आवश्यक है, वह है ज्ञान, सदाचार और आचरण। बिना ज्ञान का मनुष्य पशुतुल्य है। क्योंकि मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जिसे उपरवाले ने ज्ञान दिया है, बुद्धि दी है सोचने और विचारने के लिये। नहीं तो वह भी पशु की भांति कुछ भी अनाव-सनाव खाता और जहाँ तहाँ सो जाता। रिस्ते-नाते, अपना-पराया, भाई-बहन, पति-पत्नी, मान-मर्यादा, प्रेम-द्वेष कुछ भी न रहता। विदेशी सभ्यता में जो हो रहा है, वह आज यहाँ भी दिखने लगा है - भाई-बहन का जो पवित्र बंधन, वह आज टूट नहीं है। उनमें भी अनैतिक और दैहिक संबंध दिखाई दे रही है। केवल क्षणिक सुख के लिये ही। जो पिता अपने बेटे की उम्र कि लड़की से शादी करता है; वह भी कुछ माह या साल के लिए। पता भी नहीं वह अपनी ही किसी पूर्व प्रेयसी की बेटे ही होगी। ऐसे कई उदाहरण जो आज तक विदेशों में मिलते थे, आजकल वह यहां भी दिखाई देने लगे हैं।

दो साल पहले की ही बात है, जब मैं कुछ ही महीनों के लिये दिल्ली गया हुआ था। तभी अपने मित्रों के साथ किसी शनिवार को या कभी कभी किसी की जन्म-दिवस के अवसर पर पार्टियों में जाने का मौका मिला था। तब मुझे एहसास हुआ कि हमारी संस्कृति अब हमारी नहीं रही। तब हम थे तो दिल्ली में ही, परंतु ऐसा लग रहा था की यह भारत की राजधानी नहीं है; जहाँ पर बाप और बेटे, भाई और बहन या बेटा अपने मां के साथ - हाथों में शराब का गिलास लिए ठुमका मार रहे थे। अंधेरे में जो डॉन्स का म्यूजिक चल रहा था; पता नहीं कौन किसके बाहों में, छाती पर और किसी की कमर पर हाथ डाले नाच रहे थे। और ये सब देखकर हमारा दिल्ली में दिल नहीं लगा और तुरंत कुछ ही दिनों में हम लौट आये थे। उसी दौरान की बात है - जब हम अपने मित्रों के साथ हरिद्वार और ऋषिकेश की यात्रा पर गये हुए थे। कई पुराने पत्र-पत्रिकाओं में हमने जो पढ़ा था - बनारस, हरिद्वार और ऋषिकेश के पाखंडियों के बारे में, तभी हमने देख भी लिया। आश्चर्य हुआ, ऐसे पाखंडी लोगों को इतना धैर्य और साहस किसने दिया, ऐसे अपकर्म करने के लिए। पुरे हिन्दुस्तान का नाम बर्बाद कर रखा है इन कम्बख्तों ने। ब्राह्मण के नाम पर धब्बा है ऐसे लोग; सब के सब धोखेबाज-चोर-लुच्चे-लफंगे हैं।

शाम होने जा रहा था। जब हम हरिद्वार पहुँचे। वहाँ का, गंगा की आरती जो टी.वी. पर देखा करते थे; हम ने तय किया, चलो सिधा गंगा किनारे चलते हैं; शाम तो हो रही है, आरती देख लेंगे फीर कमरा ले लेंगे। यह विचार करके हम चले गंगा आरती देखने। बहुत ही अविस्मरणीय था वो शाम और वह दृश्य गंगा जी की, ऐसे लग रही थी जैसे की स्वयं गंगा मैया शिवजी की जटा से उछल कर आ रही हैं। सूर्यास्त के साथ साथ दिपों की टिमटिमाहट से बढ रही आलोक से पुरा गंगा किनारा प्रज्वलित हो गया था। चारों तरफ दिपों की आलोक और बिजली की आलोक से आलोकित सचमुच किसी स्वर्ग की भांति और हरि का द्वार जैसा महसुस होने लगा था। आरती

के बाद जब हम गंगा घाट से सहर की ओर निकले, तब एक ब्राह्मण पाखंडी से सामना हो गया। वह हमें कहने लगे- "महाशय, पुजा तो कर लीजिए; अच्छा महर्त है और हम आपकी पुरी बन्दोबस्त भी कर देंगे। आपकी रहने का, खाने का और उसका भी..."।

- "अरे पंडितजी, वो उसका भी का क्या मतलब है?"

हमने पुछा तो जवाब दिये- "क्युं शर्मिदा करते हैं आप मुझे उलटा पुछ के: अजी जवान हैं आप, आप की सेवा करना तो हमारा धर्म है। अतिथी देवो भवः। और आप तो सही वक्त पर पधारे हैं। एकदम नयी नयी माल आयी है ज्वालापुर से। और हम पंडितों की वजह से पुलिस का कोई टेन्सन ही नहीं। आराम से रात गुजार सकते हैं और कल सुबह हो सके तो ऋषिकेश, डेराडून आदि घूम लेंगे। और कल की रहणी अगर ऋषिकेश में होगी, तो उसका बन्दोबस्त भी हम करवा देंगे। क्या कहते हैं महाशयजी?"

मेरा तो दिमाग गरम हो गया ये सब सुनके। दिनभर तो लुटते रहते हैं यात्रियों से और शाम होने पर शुरु ये घटिया धंधा। तमासा लगा रखा है इन कमिनों ने। मैने उनसे विनयपूर्वक कहा- "पंडितजी, आपने अभी अभी जो व्याख्या सुनाया, कृपया वो जरा हमारे माता-पिता को बतायें तो अच्छा होगा; वो s s s जरा पिछे आ रहे हैं।"

- "क्युं शर्मिदा कर रहे हैं आप मुझे; ठिक है अभी नहीं तो फिर कभी। अगर आपका मन ललचाया, अगर... तो बेफिक्र मेरे पास आ जाईये। वो जो पुजा की सामग्री और कैसेट की दूकान है-वो हमारी है। वहाँ आकर रामलाल से, यानी की मुझसे मिलना है कहिए, जरूर मिलवा देंगे। नमस्कार।"

- नमस्कार।

सामने देवी का मंदिर और पिछे देवियों की मंडी। ठिक ही तो दिख रहा है अब यहाँ - कितनी तपस्या करलो, कितना तीर्थ करलो, कितना ध्यान, कितना प्राणायाम, कितनी बार हज़, कितने साल रोजा, कितने व्रत, कितने उपवास, कितने गुरु, कितने संत, कितनी दिक्षा, कितनी शिक्षा करने से क्या फ़ाईदा अगर अपना आचरण शुद्ध न हुआ तो ये घर घर की महाभारत कभी भी ख़त्म नहीं होगी। क्युं की ये सब से सभी के हृदय पर जीवनव्यापी प्रभाव नहीं पड़ेगा - प्रभाव तो सदा सदाचरण का पडता है। साधारण ज्ञान, साधारण उपदेश की चर्चा तो हर गिर्जे, हर मंदिर और हर मस्जिद मे होते हैं; परंतु उनका प्रभाव तभी हम पर पडता है जब मंदिर का पुजारी स्वयं ब्रह्मर्षि होता है, मस्जिद का मुल्ला स्वयं पैगंबर और रसूल होता है, गिर्जे का पाद्री स्वयं ईसा होता है। तब जाकर हमारा ये अमुल्य जीवन, ये मानव जन्म साकार हो सकता है। इसके अतिरिक्त तो कदयपि नहीं।

पिछले साल जब हम बल्लारी (कर्णाटक) में थे; तब मेरे कई मुसलमान- दोस्त बन गये थे। जो

आज भी मुझसे काफ़ी दिल्लगी से, प्यार से और कभी कभी खफ़ा होकर भी फोन पर बात कर लिया करते हैं। जैसे कि- "आपका जाना हमारे लिए किसी ग़म की सरहद को पार करने का जैसा है... गुलशन में, गुलों की बाग़ में बिखरा हुआ गुलाब के जैसा हूँ मैं..."

बल्लारी छोटा सा सहर है, पर महंगा बहुत है। वहाँ का रहन-सहन बैंगलुर से भी महंगा है। ये मेरा तजुर्बा कहता है। क्युं कि, उसी साल मेरे साथ और बारह कर्मचारी भी बल्लारी छोड़ चले आये थे; सिर्फ़ वहाँ कि महंगाई और घरों की ज्यादा किराये की वजह से। एक बार मेरे अज़िज दोस्त शाहरुख़ ताज़ के निमंत्रण से इद-उल-फ़ितर के अवसर उनके जुलुस में जाने का मौका मिला था। बहुत ही शांति-पूर्ण यात्रा था वह और उसी दिन किसी महिला प्रवचक से कई ज्ञान की बातें भी हमें सीखने को मिली, जो कि एक महिला सभा में भाषण दे रहे थे। वह बड़े ही कट्टरपंथी महिला थे। उनका भाषण पुरी तरह उन मुसलमान महिलाओं के लिए था जो कि अपनी चाल-चलन और आधुनिक ढंग के रहन-सहन से अपनी संस्कृति और धर्म का अपव्यवहार करते हैं। आज कल के छोरे और छोरियों कि बात, जो पांचों वक्त नमाज़ अदा करने की तो दूर की बात, एक बार भी मस्जिद जाना पसंद नहीं करते। जिनका कर्तव्य है सूरज उगने के बाद--सूरज डूबने की सीमा तक बुर्खे का धारण करें...

खुदा न करे मरने के पश्चात उनको कब्र नसीब न हो। पाश्चात्य सभ्यता और दूसरे धर्मों की मुखालफ़त करना हमारे कुरान में नहीं है; परंतु अपने धर्म का मान रखना, अपने कर्म में लगा रहना ही एक सच्चा मुसलमान का कर्तव्य है। ये शरिर मिट्टी से बना है और एक दिन मिट्टी में दफ़न हो जायेगा। जिसके लिये तु इतना सज़-धज़ रहा है, जिसके प्रति तेरा इतना लोभ और मोह है, वह सब एक दिन खाक में मिल जाएगा। दूसरों का दोष, दूसरों की खराबी, दूसरों की निन्दा करने में जितना समय तु व्यर्थ करता है, उतना समय तु अगर अपने चरित्र सुधारने में लगेगा, तो ये देश, ये संसार अपने आप ही सुधर जायेगा। सच्चा मुसलमान वही है जो ओलिया-ए-दीन पर चले, सुबह उठकर वजु करे, मुंह-हाथ, पांव धोकर नमाज़ अदा करे। जो सिर अपने मालिक के सम्मुख न झुके, उसे काटकर धड़ से अलग करदेना ही उचित है।

मासा-अल्लाह, क्या आघाज थी उस आवाज़ में। मेरे तो रोएं खड़े हो गए और दिल पिघल कर आँसू में बहगये। सच में, ऐसे प्रचारक, ऐसे प्रबंधक मूल्क के हर कोने में होनी चाहिए। हर किसी की दिल में ये आवाज़ पहुँचनी चाहिए।

असल बात तो ये है कि दिन-व-दिन दुनिया जितनी आधुनिकता और मशिनीकरण होती जा रही है- मनुष्य उतना ही आलसी और व्यसन-विलासी बनने लगा है। और उसी कारण से ही, मनुष्य सब जानते हुए भी अपने अंदर कि ज्ञान को, अपने में जो कला है, हुनर है - समाज की भलाई के लिए उपयोग नहीं कर रहा है। मनुष्य ये सोचना चाहिए कि ज्ञान, कला और हुनर जो भी है उसे बाँटने से और भी अधिक बढ़ता है, न की घटता है। और उसी चीजों को सही समय पर, सही मार्ग पर, सही-आवश्यक जगह पर व्यवहार करने से ही एक सच्चे और ज्ञानी मनुष्य का श्रेय प्राप्त



होता है।

मेरे एक मित्र के छोटे भाई ने लगभग ढेढ़-या-दो साल पहले ही इस्लाम धर्म ग्रहण कर लिये थे। सुनकर तो आश्चर्य हुआ परंतु उनसे मिलने को मुझमें उत्सुकता बढ़ने लगी। असल में बचपन से ही मुझे धर्म, संप्रदाय, ज्ञान-चर्चा के विषय में ज्यादा रुचि है। परंतु मंदिर जाना, नारियल तोड़ना, माथा टेकना... ये सब मुझसे नहीं हुआ है। ये शायद आधुनिक सभ्यता का एक प्रकार का कुप्रभाव भी है मेरे उपर। मुझे न किसी धर्म से द्वेष है, न किसी जाती से घृणा है, न किसी संप्रदाय से लगाव है। ये जाती, धर्म, संप्रदाय जो भी हैं, सभी एक एक विभाग (Department) हैं, जो कि उपरवाला ने बनाया है। और हम सब उन विभागों के कर्मचारी हैं। कोई उच्चस्तर पर तो, कोई मध्यस्तर पर, कोई निम्नस्तर पर। एक नाटक, कहानी या सिनेमा तभी अच्छी लगती है जब पुरे कलाकारों का सत-प्रतिशत योगदान रहा हो। सिनेमा में भी देखिये - एक छोटे से छोटा पात्र भी महत्वपूर्ण है कहानी को सम्पूर्ण या सफल बनाने में। वैसे ही यहाँ हर किसी को अपने जीवन में, इस संसार में आवश्यकता है। और उस नाटक रचयता को ही मालुम होगा कबतक किसकी आवश्यकता है। उपरवाले ने मुझे एक हिन्दु परिवार में जन्म दिया है और ये हुआ मेरा वर्ग (Category) कि मैं एक हिन्दु हूँ। लेकिन इतने में बात खतम नहीं हुई। सब के लिए कुछ न कुछ कर्म बांट दिये गये हैं। तुम ये करो, तुम वो करो, ऐसे। परंतु ये सभी का मक्सद एक ही है- मंजिल एक ही है।

"रास्ते अलग-अलग हैं खुदा को पाने को मगर, मंजिल एक है, जुदा-जुदा नहीं ॥" - ख्वाजा मोइनुद्दिन चिश्ती।

धर्म कुछ भी क्युं न हो, कर्म एक होना चाहिए। वह है सेवा। ईश्वर कहो, अल्लाह कहो, साई कहो, ईसा कहो - सभी ने यही आदेश दिया है कि- दिन में मुझे थोड़ा याद करो और लोगों की सेवा करो। सेवा भी ऐसा होना चाहिए, निःस्वार्थर सेवा। न की किसी कि गला काट कर किसी दूसरे की सेवा करो; उसे सेवा नहीं कहते अघोर पाप कहते हैं, जिसका कोई क्षमा भी न हो शायद।

बल्लारी से आने से पहले मेरे प्रिय मित्र इस्माईलजी मुझसे बहुत नाराज़ थे। वजह था कि थोड़ी ही दिनों में मैं जुदा जो हो रहा था उनसे। इसके विपरीत मैंने उन्हें हैदराबाद आने का आमन्त्रण किया। इससे वह मंजुर तो थे, लेकिन एक ही बात वह कहे- मुझे भय है! ये सुनकर मेरे मुंह से तुरंत यह बात निकली - किस चिज़ की भय? कन्युनिटी की? गोली मारो उसको। दस साल पहले, मैं हैदराबाद में तीन साल रह चुका हूँ। इससे अच्छी जगह आपको कहीं नहीं मिलेगी। खामोखां आप परेशान हो रहे हैं! और रही बात कन्युनिटी की, इतना ही भय है तो निकाल के फेंक दिजिए अपने दिल से कि आप मुसलमान हैं। जैसे कि मैं जी रहा हूँ। हर मंदिर, हर गिरजा, हर मस्जिद मेरे लिये खुला है। मुझे ज्ञान चाहिए और मेरे पास जीतना कुछ भी है वह मुझे लोगों में बांटना है। यही तो खुदा का आदेश है। जीसकी वजह से आज मैं बिन्दास घुम-फिर रहा हूँ। क्या है कि- एक चीज़ को पकड़कर रखने से या ज्यादा पसंद करने से , उसे खोने का भय रहता है। अगर

चोरी हो भी जाता है, तो दुःख होता है; दिल को चोट पहुँचती है। फिर गुस्सा आता है, मन में हिंसा की भावना जागृत होती है। और उसके आगे जो होगा... उसे खुदा के लिए न सोचना ही भला है। इसलिए घर में हम कभी-कभी चिंटियों के लिये अलग से शक्कर किसी कोने में रख देते हैं; ता की वह हर जगह मुँह न मारें। मेरी बात मानिये आप हैदराबाद आ ही जाईये। मुझे तो आप अपना छोटा भाई मानते हैं फिर डरने की क्या बात है? और तो ये भारत है न कोई पश्चिमी देश है जहाँ पिस्तौल लेके सभी घूम रहे हैं। दिन-बदल रहे हैं। आज वैसा नहीं है जो कुछ साल पहले हुआ करता था। और विज्ञान की प्रगति का यही एक फ़ाईदा हुआ है कि- सब इतने व्यस्त हो गये हैं, कि किसीको किसीकी बुरा सोचने का समय ही नहीं है।

आखिर मुझे दुःख हुआ कि इस्माईलजी फ़िजिक्स के इतने अच्छे प्रोफ़ेसर होकर भी उनके मन में इतना भय था-सीर्फ समाज में रहने के लिये। ये कैसा न्याय है? आतंकराज के कारण एक अनिर्दिष्ट भय जो कई लोगों के दिल में जमा बैठा है; कब ख़तम होगा इसका कोई निर्दिष्ट सीमा नहीं है। आधुनिकता और वाणिज्य की वर्तमान स्थिति में एक व्यक्ति को दुसरे व्यक्ति से वैसा भय तो नहीं रहा जैसे पहले रहा करता था पर एक जाति को दुसरे जाति से, एक देश को दुसरे देश से भय के कुछ झलक आज भी दिखाई देते हैं। जिन्हें मुलोट्पोटन करना हम सभी का कर्तव्य है। ऐसे कई परिस्थितियों से हम गुजर चुके हैं; गुजर रहे हैं और गुजरेंगे जरूर, परंतु उन परिस्थितियों का सामना या उनका समाधान अपने-अपने अंदाज से शांतिपूर्ण तरीके से करने से ही हमारे देश में चैन-व-अमन कायम रह सकता है। इसीमें सब की भलाई है। यही मनुष्य जीवन जीने कि सार्थकता है।

= = =

© नरेश कुमार बेहेरा, 2005